संपादकीय

जनसत्ता 16 सितंबर, 2014: राजनीतिक दलों को सूचना अधिकार अधिनियम के तहत लाने का मामला फिर से विवाद का विषय बन सकता है। गौरतलब है कि केंद्रीय सूचना आयोग ने एक याचिका पर सुनवाई करते हुए पिछले साल जून में यह फैसला सुनाया था कि राजनीतिक दल आरटीआइ यानी सूचनाधिकार कानून के अंतर्गत आते हैं। यह याचिका आरटीआइ कार्यकर्ता सुभाष अग्रवाल और चुनाव सुधार के लिए सक्रिय संगठन एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफार्म्स ने दायर की थी। आयोग ने अपने फैसले में कांग्रेस और भाजपा समेत छह राष्ट्रीय पार्टियों को निर्देश दिया था कि वे सूचनाधिकारी की नियुक्ति करें, एक महीने के भीतर आवेदनों के जवाब दें और आरटीआइ के प्रावधानों के तहत जरूरी सूचनाएं अपनी वेबसाइट पर डालें। मगर आयोग के इस निर्देश पर अमल नहीं हुआ, क्योंकि राजनीतिक दल उसके फैसले को वाजिब नहीं मानते। तब किसी भी पार्टी ने इस फैसले के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में अपील क्यों नहीं की? शायद इसलिए कि उन्हें यह भय रहा होगा कि अगर न्यायालय का निर्णय आयोग के निर्देश के पक्ष में आया तो उसे मानने के सिवा कोई चारा नहीं रहेगा। क्या उन्हें यह उम्मीद भी रही होगी कि खामोशी अख्तियार कर लेने से बात जहां की तहां रह जाएगी? पर आयोग ने भाजपा और कांग्रेस सहित छह राष्ट्रीय पार्टियों को नोटिस जारी कर पूछा है कि उसके आदेश का पालन न करने पर क्यों न उनके खिलाफ जांच शुरू की जाए।

आयोग ने सभी संबंधित दलों से एक महीने के भीतर जवाब मांगा है। इस नोटिस पर कैसा जवाब आएगा, इसका कुछ अंदाजा पार्टियों की पहले की प्रतिक्रियाओं से लगाया जा सकता है। पार्टियों की दलील रही है कि वे कोई सरकारी विभाग नहीं हैं, इसलिए सूचनाधिकार अधिनियम उन पर लागू नहीं होता। उनका यह भी कहना रहा है कि उन्हें आरटीआइ के तहत लाने से उनकी निर्णय-प्रक्रिया की स्वतंत्रता बाधित होगी। फिर ऐसी भी सूचनाएं मांगी जा सकती हैं, जिनका उनके राजनीतिक विरोधी दुरुपयोग कर सकते हैं। दूसरी ओर, आयोग ने अपने फैसले में तर्क दिया था कि राजनीतिक दलों का गठन निर्वाचन आयोग में पंजीकरण के जरिए होता है, इसलिए वे सार्वजनिक प्राधिकार हैं। फिर, मान्यता-प्राप्त पार्टियों को आय कर में छूट, कार्यालय के लिए बंगले या भूखंड के आबंटन, चुनाव के समय दूरदर्शन, आकाशवाणी से मुफ्त प्रसारण आदि के रूप में सरकार से कई सुविधाएं मिलती हैं। न तो आयोग के इन तर्कों को निराधार ठहराया जा सकता है न पार्टियों की यह आशंका गलत कही जा सकती है कि कहीं आरटीआइ का रास्ता खुल जाने से उनके रणनीतिक फैसलों या उम्मीदवारों के चयन की वजहों के बारे में भी जानकारी न मांगी जाए! पर क्या पार्टियों को अपने वित्तीय स्रोत का खुलासा करने से बचने की छूट होनी चाहिए?

राजनीतिक दल अपने आय-व्यय की बाबत गोपनीयता के आवरण में काम करते रहे हैं। उन्हें यह डर सताता होगा कि सूचनाधिकार का हथियार उनसे यह सहूलियत छीन लेगा। लेकिन अगर पार्टियों को अपने वित्तीय स्रोत न बताने की आजादी हो, तो भ्रष्टाचार के खात्मे की उम्मीद भला कैसे की जा सकेगी! लिहाजा, उन्हें अपने एतराज को पार्टी की निर्णय-प्रक्रिया, रणनीतिक फैसलों और आंतरिक विचार-विमर्श तक सीमित रख कर, आरटीआइ के लिए राजी होना चाहिए। यों पार्टियों को अपने आय-व्यय का ब्योरा देना होता है, पर वह एक मोटा हिसाब रहता है, जिससे बस यही पता चलता है कि किस साल उन्हें कितनी आय हुई और उन्होंने कितना खर्च किया। पर यह बात कही जाती रही है कि बड़ी रकम के चंदों के पीछे अक्सर निहित स्वार्थ होता है, जिसका नतीजा पक्षपातपूर्ण सरकारी फैसलों के रूप में आता है। इसलिए पार्टियों को और जवाबदेह बनाने और उनके वित्तीय व्यवहार में पारदर्शिता लाने के कदम जरूर उठाए जाने चाहिए।

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्वटिर पेज पर फॉलो करने केलि क्लकि करें- https://twitter.com/Jansatta